International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(3): 24-26

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(3): 24-26
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-03-2019
Accepted: 23-04-2019

मीनाक्षी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
मीनाक्षी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

वैदिक साहित्य में नैतिक मूल्यः असुर शब्द के विशेष संदर्भ में

मीनाक्षी

प्रस्तावना

नैतिक मूल्यों का अर्थ

नैतिकता, शील, सदाचार ये चारित्रिक श्रेष्ठता के उपादान वैदिक संस्कृति का मूल है। भारतीय संस्कृति की आचार दृष्टि समस्त मानवता में चारित्रिक उत्थान के लिए अतीव उपयोगी है। प्राचीन भारतीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए समग्र पारिवारिक प्रक्रिया और सामाजिक व्यवस्था को संपुष्ट करने वाले संस्कार, विधान एवं धार्मिक आचरण नैतिक मूल्यों के प्रति वैयक्तिक प्रतिबद्धता पर विशेष बल देते है।

नैतिक मूल्य मानव जीवन में सदाचरण एवं मानवता के विकास के प्रमुख मापदण्ड है, एवं जीवन के विविध क्षेत्रों में सन्तुलन स्थापित करते है। नैतिकता के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्द धर्म, कर्त्तव्य आदि का उद्देश्य मानव जीवन का उत्कृष्ट संचालन और विदेशी भाषाओं के 'मोरल' और 'एथिक्स' शब्दों के ग्रीक एवं लैटिन संज्ञा शब्द 'मोर्स' एवं 'एथॉस भी मानव के व्यवहार या आचरण अर्थों को ही द्योतित करते हैं। कोश ग्रन्थों का भी प्रायः नैतिकता से अभिप्राय मार्गदर्शन, पद्धति, रीति, औचित्य से है[1]। व्यापक अर्थ में नीति इहलोक एवं परलोक में सफलता का उपाय है।[2] मूल्य शब्द का सम्बन्ध 'मूल' पद से है। मूल का तात्पर्य है–नींव, जो गुण तत्व नींव के समान व्यक्ति एवं समाज को धारण करते हैं, उन्हें मूल्य कहते हैं इस पद में श्रेष्ठता एवं जन–कल्याण की भावना समाहित है तथा इन्हीं की प्राप्ति के लिए जीवन के समस्त क्रिया–कलाप घटित होते है।

मनुष्यों के आचरणों का उचित–अनुचित रूप में मूल्यांकन करने के लिए जिन विभिन्न मापदण्डों की आवश्यकता होती है, वे वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र प्राप्त होते है, वैदिक साहित्य में प्राप्त होनेवाले नैतिक मूल्य किस प्रकार प्रेरणास्पद और लाभप्रद है, इस विषय को असुर शब्द के विशेष सन्दर्भ में देखना इस पत्र का उद्देश्य है।

असुर शब्द का अर्थ

असुर का आधारभूत शब्द है असु जिसका अर्थ है प्राणवान, बलवान। ऋग्वेद में यह शब्द प्रधान रूप से देवों की उपाधि है, एवं ऋग्वेद में असुरों के प्रति आदर और अनादर दोनों भाव प्राप्त होते है। इन्द्र के लिए प्रयुक्त असुर शब्द का अर्थ करते हुए सायण ने लिखा है–शत्रुओं को दूर फेंकने वाला अथवा असु शब्द का अर्थ प्राण या बल है, अर्थात् प्राणवान् या बलवान् ही असुर है।[3] अश्विनौ के लिए प्रयुक्त असुर शब्द का अर्थ 'बलवन्तौ'[4] किया है वरूण के लिए यह पद अत्यधिक प्रयुक्त हुआ है एवं सायण ने असुर शब्द का अर्थ 'शत्रूणां क्षेपक':[5] तथा 'पापकृतां निरसित':[6] किया है, अग्नि के लिए प्रयुक्त असुर का अर्थ बलवान्[7] किया है। कुछ स्थलों पर इन्द्र, अग्नि, सूर्य को असुरहा[8] कहा गया है।

वरुण के अर्थ मे असुर शब्द का अर्थ

ऋग्वेद में वरुण प्रभावशाली देवता है, उनकी स्तुति कम सूक्तों में प्राप्त होती है किन्तु वरुण संबंधी ये सूक्त वैदिक साहित्य के सर्वाधिक उदात्त सूक्तों में परिगणित है। इन सब में वरुण को देवता, असुर, मनुष्य समस्त प्राणियों का राजा[9], सम्राट[10] एवं राजा के रूप में किसी पर आश्रित न होने के कारण स्वराट्[11] कहा गया है। इन्द्र, सूर्य, अग्नि के लिए असुर शब्द का प्रयोग उनके वैयक्तिक बल का सूचक है किन्तु वरुण के लिए अपनी माया या रहस्यात्मक शक्ति से जगत् का पालन करने के कारण एवं नैतिक नियमों के अधिष्ठाता होने से एवं विशाल, शक्ति वाले वरुण के विभिन्न नाम जो उसकी सामर्थ्य एवं शक्ति का परिज्ञान कराते हैं, यथा पूतदक्ष (पवित्र सामार्थ्यवान्), 'धृतव्रत' सुक्रतु (शोभनकर्म सम्पन्न) 'चिकित्वान' (प्रज्ञावान्) 'उरुत्वक्षस्' (विशालदृष्टि) तथा सहस्त्रचक्षः इत्यादि प्रयुक्त होने से असुर उपाधि वरुण के लिए ही उपयुक्त है।

नैतिक नियमों के अधिष्ठाता वरुण

ऋग्वेद के कवियों के समक्ष वरुण का नैतिक पक्ष तथा क्रियाशीलता ही मुख्यतः वर्ण्य रही है, इसलिए यास्क ने वरुण की व्युत्पत्ति वृ–वरणे से की है क्योंकि वरुण सज्जनों का वरण करता है ''वरुणो वृणोतीति सतः''[12]। शौनक ने बृहद्देवता में यास्क के इस निर्वचन का विस्तार किया है–'अपने मूर्त रस (जल) द्वारा यह तीनों लोकों को आवृत्त करता है, इसलिए कृपा की आकांक्षा रखनेवाले (ऋषिगण) वरुण नाम से स्तुति करते है।[13] सायण ने वरुण शब्द का निर्वचन वृ–आवरणे से किया अर्थात् पापियों को बन्धन से आवृत्त करने वाला एवं संसार को अन्धकार से आवृत्त करने वाला भी कहा है। वरुण विश्व में ऋत के देवता है एवं समाज और व्यक्ति के सन्दर्भ में वे न्याय के प्रतिनिधि है, ऋग्वेद में ऋत एक अद्भुत शब्द है, जो स्वयं में अनेक गम्भीर गूढ तथा महत्वपूर्ण अर्थों को निहित किये हुआ है, वेदों में निहित यह 'ऋत' सिद्धान्त तत्कालीन सत्यनिष्ठ, नैतिकतापरायण और अनुशासनबद्ध समाज का उज्जवल उदाहरण है, जनसमूह को व्यस्थित समाज का रूप देने के लिए विधि–निषेध, उचित–अनुचित कर्मों से संबंधित जो धारणाएँ प्रचारित हुई, उन्हें ऋत नाम दिया गया है, जो आचरण इन धारणाओं के विपरीत हो वह अनृत है ऋत और अनृत की धारणाएँ मूलतः नैतिक है। ऋत प्रकृति और मानव समाज के नियमों का समवाय है।

सत्य एक शाश्वत नैतिक मूल्य है, मानवीय आदर्शों का व्यावहारिक स्वरूप आचार है एवं आचार का उल्लंघन करने पर वैधानिक कार्यवाही करना आवश्यक होता है। वैदिक साहित्य में वरुण को नैतिक मूल्यों का नियन्ता माना गया है। नैतिकता तथा सत्कर्मा के सर्वोत्कृष्ट परिपालक होने के कारण वरुण पापियों को, विशेषतः असत्यवक्ताओं को कड़ा दण्ड देते है।[14] ऐसे व्यक्तियों को वे अपने पाशों से बाँध लेते है, इसलिए ऋग्वेद में स्थान–स्थान पर वैदिक कवियों की वरुण के प्रति यह प्रार्थना प्राप्त होती है कि वे हमें अपने पाशों से छुड़ायें।[15] वरुण के सूक्तों में व्रत या ऋत का बार–बार उल्लेख हुआ है देवता भी वरुण के व्रत का पालन किया करते है।[16] वरुण सत्यासत्य तथा नियमानियम का साक्षी प्रेरक तथा संचालक हैं। यही मनुष्य के पाप पुण्यों का द्रष्टा तथा गुण एवं दोष का अन्वीक्षक तथा परीक्षक है। वरुण अपने स्वर्ग निर्मित सहस्त्रों द्वार वाले द्युलोक स्थित् प्रासाद[17] में बैठ कर किए गए तथा किये जानेवाले अद्भुत् कर्मो को देखता है।[18] इसी प्रकार ऋतम्भरा संस्कृति के संपोषक वैदिक ऋषि जीवन में कल्याणकारी इच्छा शक्ति के उदय की कामना करते है।[19] जब व्यक्ति में शुभ संकल्प होगा, तब वह ऋत की ओर उन्मुख होगा और जब वह ऋत के प्रति जाग्रत होगा तब उसमें श्रेयस्कर शुभ संकल्पों का उदय होगा।[20]

वैदिक संहिताओं में निरर्थक ही किसी कार्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा नहीं दी गई है अपितु उनकी आचारिक प्रवृत्ति भी उद्देश्यपूर्ण थी अतः वैदिक संहिताओं में आचार में प्रवृत्त होने के निर्देश के साथ ही उसके सुफल का भी बहुशः वर्णन है। एक ऋग्वेदीय मन्त्र में ऋत की महिमा बताते हुए कहा है कि 'ऋत अनेक प्रकार की सुख–शान्ति का स्रोत है, ऋत की धारणा पापों और दुःखों को नष्ट करती है। ऋत केवल ऐहिक उपलब्धियों का ही नहीं अपितु आमुष्मिक उपलब्धियों का भी मूल माना जाता था, ऋत को अमृत तत्व की प्राप्ति का भी साधक माना गया है।

पाप और पुण्य दो प्रकार के कर्म मानवों द्वारा किये जाते है पाप कर्म दुष्कर्म है और पुण्य कर्म सत्कर्म है पापकर्म अथवा दुष्कर्म करके मनुष्य सदाचारी नहीं कहा जा सकता । संहिताओं में स्पष्ट उल्लेख है कि ऋत के पंथ को दुष्कर्मी पार नहीं कर सकते।[21] इसलिए वैदिक ऋषि पुनः पुनः अपने पाप को नष्ट करने[22] की अपने नियमोल्लघंन की क्षमा करने की तथा दया करने की वरुण से प्रार्थना करते है[23]–हे वरुण! मर्त्य होने के कारण हमसे जो भी अपराध देवताओं के प्रति हुए हो तथा अविवेक के कारण हमने जो भी नियमोल्लघंन किया हो, हमें क्षमा करो। हमे सारे पापों से मुक्त करे।[24] वरुण के प्रति कहीं गई स्तुतियों में सर्वत्र ही दीनता तथा विनयशीलता की ऐसी भावना स्पष्टतया दिखाई पड़ती है जो अन्य देवों के प्रति कहे गए सूक्तों में दृष्टिगोचर नहीं होती है। इस विनय अथवा भक्ति से प्रसन्न होकर वरुण मनुष्यों के पापो को क्षमा कर देते है और उन्हें पाशमुक्त करते है वह पितरों द्वारा किए गए पापों से भी मनुष्यों को मुक्त कर देते है।[25]

वस्तुतः ऋषियों ने वेदों में वर्णित नैतिक नियमों को प्रतिपल सजग होकर अनुभूत किया है इसलिए वे इष्टदेव को उन्हीं गुणों से अभिभूत देखते है। अपने इष्ट को सत्य–स्वरूप अहिंसक, विद्वान, परममित्र, दयालु, निष्पाप आदि कहने का अभिप्राय ऋषि का यही था कि ये सभी गुण उसे स्वयं अभिप्रेत थे इसलिए वेदो में वर्णित इष्ट देवता वरुण को ऋषि इन्हीं गुणों से युक्त मानते है उन्हें ऋत के पोषक तथा रक्षक होने के कारण ऋतावृध्[26], धर्म अथवा नियमों का स्वामी होने से धर्मपति[27] सांसारिक नियमों के धारक होने से धृतव्रत[28] एवं सत्य के पालक होने से उन्हें सत्ययुज्[29] कहा गया है। उन्हें मनुष्य के हृदय में सद्विचार एवं सद्गुणों का वर्धक, सत्य का रक्षक, असत्य का अपाकर्ता एवं अनृत के लिए दण्डित करने वाला कहा गया है। इस प्रकार वरुण को जिन गुणों और कार्यों से युक्त किया गया है वे इनके चरित्र को एक ऐसा नैतिक धरातल तथा पवित्रता प्रदान करते है जो अन्य किसी भी वैदिक देवता के गुणों से कहीं अधिक है।

वेद के इस ऋतनियामक तथा सामर्थ्यशाली देवता का महत्त्व वेदोत्तर काल में बहुत कम होता गया और वरुण का यह उत्कर्ष एवं समादर सुरक्षित नहीं रहा। किन्तु अवेस्ता में वेदों में वर्णित वरुण शब्द के लिए प्रयुक्त असुर उपाधि एवं नैतिक नियमों से सम्बन्धित भाव जाता रहा। अहुर ईरानी देवमण्डल का अधिपति है, मज़्दा (बुद्धिमान, संस्कृत–मेघा) शब्द अधिकतम विशेषण के रूप में प्रायः इस शब्द के साथ प्राप्त होता है, जिस प्रकार ऋग्वेद में वरुण को 'ऋत का स्रोत' कहा गया, उसी प्रकार अवेस्ता में उसे 'अशाहे खाओ' कहा गया है, जरथुस्त्र धर्म में नीति, धर्म, व्यवहार पक्ष का प्राधान्य है, अवेस्ता साहित्य में आचार–पालन की सार्थकता, दया, सत्य, आत्मिक शुद्धि पवित्रता में बतायी गयी है उनकी समस्त नीति में उत्तम विचार, उत्तम वचन, उत्तम कार्य का विशेष महत्त्व है, अश के अनुसार आचरण करना आवश्यक माना गया है एवं अश को ही परलोक प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार ऋग्वेद में वर्णित, वरुण एवं ऋत विषयक धारणा का विकास कालान्तर में अवेस्ता में अहुर मज़्दा एवं अश के रूप में प्राप्त होता है।

इस प्रकार वेदों तथा परम्परागत अन्य धर्मों में भी नैतिकता, शील, सदाचार आदि सद्गुणों के अर्जन के लिए सतत प्रयत्न किया जाता रहा है, व्यक्ति और समाज दोनों के हित तथा उन्नयन के लिए इन सद्गुणों को अपनाने के लिए बल दिया गया है।

संदर्भः

1. वामन शिवराम आप्टे कोश, पृ. 555
2. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, द्वितीय सं.पृ.6
3. ऋ0 1/54/3
4. ऋ0 1/151/4
5. ऋ0 2/27/10
6. ऋ0 2/29/7
7. ऋ0 4/2/5
8. ऋ0 10/17/2; 7/13/1
9. ऋ0 2/27/10
10. ऋ0 1/27/7
11. ऋ0 2/28/1
12. निरुक्त 12/3
13. बृहद्देवता 2/33

14. अ0 वे0 4/16/6
15. ऋ0 6/74/4
16. ऋ0 8/21/7
17. ऋ0 9/88/5
18. ऋ0 1/25/11
19. ऋ0 1/35/1
20. ऋ0 109/13
21. ऋ0 9/73/6
22. ऋ0 1/24/9; 1/25/1, 2
23. ऋ0 1/25/19, 7/86/2, 5, 7; 7/89/4, 9
24. ऋ0 7/89/5
25. ऋ0 7/86/5
26. ऋ0़ 1/23/5
27. श0ब्र0 5/3/3/9
28. ऋ0 1/25/8
29. श0ब्र0 5/4/4/10